International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारत में किसान की आत्महत्या का संकटः संरचनात्मक हिंसा का विश्लेषण

डॉ. अनीता भट्ट

सहायक आचार्या
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार
भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश है। कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी के रूप में सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों में से एक है। जहाँ कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान भारत की सकल घरेलू उत्पादन में लगभग 18 प्रतिशत का है[1]। भारतीय आबादी का लगभग 70 प्रतिशत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उद्योग पर निर्भर करता है। देश का भरण पोषण करने वाला **"अन्नदाता"** अर्थात किसान जिसकी स्थिति वर्तमान समय में अत्यंत शोचनीय हो गई है। प्रतिवर्ष किसान आत्महत्या से संबंधित मामले अप्रत्यशित स्तर पर दर्ज हुए हैं। भारत के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एन.सी.आर.बी), भारत में आकस्मिक मौतें एवं आत्महत्याएँ रिपोर्ट (ए.डी.एस.आई) के आंकड़े बताते है कि 2019 में कृषि क्षेत्र से जुड़े 10,281 लोगों (5,957 किसान और 4324 खेतिहर श्रमिक) ने आत्महत्याएँ की। यह संख्या देश में 2019 के आत्महत्या के कुल 1,39,123 मामलों का 7.4 प्रतिशत है। जिसमें मुख्यतः महाराष्ट्र (3,927), कर्नाटक, (1,992), आंध्र प्रदेश (1,029), मध्य प्रदेश (541), तेलंगाना (499) और छत्तीसगढ़ (499) शीर्ष छह राज्य सम्मिलित हैं। अतः इस प्रकार के परिदृश्य में भारत में किसानों की आत्महत्या एक गंभीर और चिंताजनक स्थिति की ओर इंगित करता है।

इसके अनुरूप, अध्ययन के प्रमुख शोध प्रश्न हैंः भारत में किसानों और खेतिहर श्रमिक आत्महत्या के मामलों में पिछले दो दशकों में बड़े पैमाने पर वृद्धि क्यों हुई हैं? यह शोध इस उपकल्पना पर आधारित है कि भारत में किसानों की आत्महत्या आज कृषि के क्षेत्र में अंतर्निहित संकट की अभिव्यक्ति है। ध्यातव्य है कि इसी क्रम में समग्र आर्थिक विकास की नीतियों के अंतर्गत कृषि के 'ग्रामीण आधारभूत संरचना' के प्रतिमान में प्रबल परिवर्तन किया गया।

विशेष रूप स्वातंत्र्योत्तर कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए हरित क्रांति के द्वारा फसल के प्रतिरूप में प्रथम बदलाव लाया गया। इस प्रकार से हरित क्रांति की अति उत्पादन की प्रतिस्पर्धा ने अगले 50 वर्ष के अंतराल में सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था को बदल दिया। अतः जहाँ एक ओर तीव्रता से कृषि क्षेत्र का विकास हुआ इसी के विपरीत फसल की विविधता भी खत्म हुई। कृषि आदानों जैसे कीटनाशक और उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग ने न केवल कृषि की लागत को और अधिक बढ़ाया बल्कि प्राकृतिक व्यवस्था को भी चुनौती दी। साथ ही, इसका दुष्परिणाम मानव स्वास्थ पर भी देखा गया। परिणामजन्य इन सभी कारकों ने किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के समक्ष और अधिक संकट खड़ा कर दिया।

इसके अतिरिक्त, 1990 के दशक में कृषि उत्पादन के स्वरूप में पुनः प्रपांतरण देखा गया। संरचनात्मक समायोजन नीतियों के अधीन कृषि खाद्यानों के स्थान पर व्यापारिक फसलों का प्रादुर्भाव हुआ। कृषि नीति के माध्यम से जैव प्रौद्योगिकी **'जीन क्रांति'** को बढ़ावा दिया गया। अतः राष्ट्रीय वैश्वीकरण की दोषपूर्ण आर्थिक सुधार की नीति के फलस्वरूप कृषि अर्थव्यवस्था हाशिए पर चली गई जबकि उद्योग एवं व्यापार गतिविधियां प्रमुख हो गई। वहीं दूसरी ओर संस्थानों की अप्रभावी प्रतिक्रिया भी उत्तरदायी अन्य कारकों में से एक हैं फलत निरंतर बढ़ते हुए कृषि संकट ने हाल ही के वर्षों में किसानों को आत्महत्या करने के लिए बाध्य किया है। कृषि संकट मुख्यतः सामाजिक, पर्यावरणीय एवं राजनीतिक मुद्दे के रूप में उभरा है। यह लेख गरीबी, भूखमरी और कुंठा जैसी इन सामाजिक पीड़ाओं से संघर्ष करते किसानों और उनके परिवारों पर **'संरचनात्मक असमानता'** के रूप में निहितार्थ का विश्लेषण करता है। जिसका प्रत्यक्ष संबंध नॉर्वेजियन समाजशास्त्री, **जोहॉन गाल्टुंग** के सैद्धान्तिक बोध **"संरचनात्मक हिंसा"** से है। इस

सन्दर्भ में, प्रस्तुत आलेख के माध्यम से भारत में किसानों की आत्महत्या से संबंधित समस्याओं और सुझावों को सूचीबद्ध करने का प्रयास किया गया।

सूचक शब्दः अर्थव्यवस्था, आत्महत्या, किसान, हरित क्रांति, खेतिहर श्रमिक, कृषि संकट, जीन क्रांति, संरचनात्मक हिंसा

प्रस्तावना

भारत में, **''अन्नदाता सुखी भवः''** मंत्र कहने की परम्परा वैदिक काल से ही रही है। भाव यह है कि भोजन करने से पूर्व जब हम इस मंत्र का उच्चारण करते हैं, तो इसके द्वारा हम किसान एवं कृषि में योगदान देने वाले सभी अन्योन्याश्रय कारकों के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं जैसे कि पशु पालन, जल, पेड़–पौधों और मिट्टी आदि। भारत की सामर्थ्य और उन्नतिशील का आधार स्तंभ अर्थात कृषि का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता के काल से ही या यूं कहे की उससे भी पहले का है। जहाँ एक ओर कृषि ही किसान के आजीविका का मुख्य स्रोत है। वही दूसरी ओर कृषि देश की अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा रहा है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय आबादी का लगभग 70 प्रतिशत कृषि उद्योग में कार्यरत है, जो भारत की सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 18 प्रतिशत का योगदान देता है। किन्तु आज अधिकांश भारतीय किसानों की दशा सन्तोषजनक नहीं है परिणामस्वरूप यह योगदान प्रत्येक वर्ष के साथ क्रमशः घटता चला जा रहा है। अधिक गंभीर का विषय यह है कि भारत को भविष्यत खाद्यान उत्पादन तथा कुपोषण जैसी गंभीर स्थिति का सामना करना पड़ सकता हैं।

जैसा कि हम जानते है कि भारत एक कृषि कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। किन्तु यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि विगत कुछ वर्षों में किसानों की आत्महत्या की संख्या में निरंतर रूप से वृद्धि हुई है। आज किसानों की आत्महत्या एक बड़ी बड़ी चिंताजनक स्थिति का रूप धारण कर चुकी है। वस्तुतः कृषि उत्पादन का बदलता स्वरूप किसानों की बदहाली के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त किसानों की पीड़ा की लिए कई अन्य कारक भी फेहरिस्त में शामिल हैं विनिर्दिष्टतः ऋणग्रस्तता, मानसून की विफलता, सूखा, फसल खराब होना, उगाई गई फसलों को बेचने में असमर्थता, कीमतों की निराशाजनक प्राप्ति, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, क्षति, गरीबी, भूखमरी, और अवसाद की भावना आदि।

यथा, पिछले 72 वर्षों में देश के आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर सरकार की वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों का कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से नकारात्मक प्रभाव का देखा गया है। इन नीतियों का सबसे अधिक दुष्प्रभाव किसान जीवन पर पड़ा अन्ततः वह आत्महत्या करने को ही एक मात्र विकल्प के रूप में देख रहे हैं। जोकि कृषि नीति की कमियों को प्रतिलक्षित करता है।

कृषि उत्पादन का बदलता स्वरूप

स्वातंत्र्योत्तर काल एवं हरित क्रांति

भारत के नवीन कृषि रणनीति में पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन 1960 के दशक में, **'हरित क्रांति'** के द्वारा अपनाया गया था। सरकार ने प्रमुख रूप से कृषि उत्पादन के विस्तार करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया था। यह वह समय था जब कृषि में उच्च उपज वाले विभिन्न बीजों, ट्रैक्टरों, सिंचाई सुविधाओं, कीटनाशकों और उर्वरकों के उपयोग जैसे आधुनिक तरीकों और तकनीकों को अपनाकर कृषि को औद्योगिक प्रणाली में परिवर्तित किया गया था। विशेषतः उच्च उपज वाली मोनोहाइब्रिड फसलों को हरित क्रांति के एक भाग के रूप में समाविष्ट किया गया, ताकि भूख और गरीबी का उन्मूलन किया जा सके। इसके अंतर्गत अनाज उपजाने के लिये पारंपरिक बीजों के स्थान पर उच्च उपज देने वाली किस्म बीजों के प्रयोग को बढ़ावा दिया गया। फलस्वरूप वर्ष 1965 के उपरान्त कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई। हाइब्रिड फसलों का सबसे बड़ा लाभार्थी गेहूं और धान था। विशेषकर पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा जैसे राज्य पहले स्थान पर रहे। निस्संदेह, हरित क्रांति का आंदोलन एक बड़ी सफलता थी जिसने देश की स्थिति को खाद्य–अभाव अर्थव्यवस्था से विश्व के अग्रणी कृषि देश में परिवर्तित कर दिया। भारत में उर्वरकों, कीटनाशकों और भूजल संसाधनों के उपयोग से खाद्यान उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई।

तालिका 1: 1951 से 2019 भारत में खाद्यानों की प्रति व्यक्ति निवल उपलब्धता
(प्रति दिन ग्राम)

वर्ष	धान	गेहूं	अन्य अनाज	दलहन	कुल खाद्यान
1951	158.9	65.7	109.6	60.7	394.9
1961	201.1	79.1	119.5	69.0	468.7
1971	192.6	103.6	121.4	51.2	468.8
1981	197.8	129.6	89.9	37.5	454.8
1991	221.7	166.8	80.0	41.6	510.1
2001	190.5	135.8	56.2	30.0	412.5
2011	181.5	163.5	65.6	43.0	453.6
2012	190.2	158.4	60.0	41.7	450.3
2013	197.4	183.1	52.7	43.3	476.5
2014	198.0	183.0	61.8	46.4	489.3
2015	186.0	168.0	77.7	43.8	475.5
2016	184.2	199.7	71.6	43.0	498.5
2017	183.0	182.7	80.6	54.7	501.0
2018	189.7	168.5	83.8	51.3	493.3
2019*	189.3	178.6	76.2	47.9	492

*अनंतिम आंकड़े – 4 अग्रिम उत्पादन अनुमान (2018–19) पर आधारित है।

स्रोतः आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, भारत सरकार, 2020

हरित क्रांति ने उपज तो बढ़ा दी है, किन्तु लंबी समयावधि ने खेती के समक्ष विभिन्न चुनौतियों को भी उत्पन्न किया हैं। कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये अपनाई गई नीतियों ने सामाजिक और पर्यावरण की दृष्टि से नकारात्मक प्रभाव डाला हैं। उदाहरणार्थ, न केवल अन्य खाद्यान अनाजों में गिरावट आई है बल्कि उच्च उपज वाली हाइब्रिड फसल और मोनोकल्चर पर बल देने के कारण पारंपरिक किस्मों की प्रजातियों का नुकसान जैसे दुष्परिणाम भी देखे गए हैं। **तालिका 1** के आंकड़ों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि 1951–2019 तक जहाँ एक ओर गेहूं और धान का उत्पादन दोगुना हो गया, वही दूसरी ओर अन्य खाद्य फसलों जैसे देशीय धान की किस्मों, मोटे, अनाज (ज्वार व बाजरा) दलहन, तिलहन इत्यादि के उत्पादन में गिरावट आई है। बल्कि फल और सब्जियाँ जैसी फसल भी उपेक्षित हो गई।

कृषि रसायनों के बड़े पैमाने पर उपयोग से खाद्य श्रृंखलाओं में भी प्रवेश कर मानव स्वास्थ्य पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है परिणामस्वरूप कैंसर, मृत शिशुओं और जन्म दोषों सहित कई गंभीर स्वास्थ्य संबंधित बीमारियाँ उत्पन्न हुई। उदाहरणार्थ, हरित क्रांति की अगुवाई करने वाला पंजाब जो ''भारत के अन्न भंडार'' या ''भारत की रोटी की टोकरी'' कहा जाने वाला राज्य, दुर्भाग्यवश आज न केवल गहरे कृषि संकट का सामना कर रहा है बल्कि कैंसर की चपेट में आया है।

विषाक्त पंजाब

पंजाब में, मालवा क्षेत्र कपास बेल्ट को लंबे समय से भारत की ''कैंसर राजधानी'' के रूप में चिन्हित किया गया है। कपास उगाने वाले इस क्षेत्र में किसानों द्वारा कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण कैंसर की असामान्य रूप से उच्च दर को जिम्मेदार ठहराया गया है। भारी धातु की विषाक्तता जैसे आर्सेनिक और यूरेनियम कैंसर के मामलों की बढ़ती संख्या के लिए जिम्मेदार है। भटिंडा स्थित एडवांस्ड कैंसर इंस्टीट्यूट की रिपोर्टों में यह तथ्य सामने आया है कि 2016 में कैंसर रोगियों की संख्या 6,233 से बढ़कर 2017 में 10,109 और फिर 2018 में 10,648 हो गई। इस क्षेत्र में कई अन्य कीटनाशक संबंधित बीमारियों जैसे सीखने की अक्षमता और प्रजनन संबंधी विकार में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

उदारीकरण काल एवं 'जीन क्रांति'

कृषि प्रणाली में दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन 1990 के दशक में देखा गया था जब भारत ने आर्थिक उदारीकरण की ओर कदम बढ़ाया। उदारीकरण की नीतियों ने कृषि के स्वरूप को वास्तविक रूप से पुनः बदल दिया। जोकि कृषि का व्यावसायीकरण के रूप में सामने आया। विशेषकर, वैश्वीकरण और मुक्त बाजार की व्यवस्था के अंतर्गत मोनसेंटो जैसी मुनाफा कमाने वाली विदेशी कॉर्पोरेट दिग्गजों का भारतीय कृषि में प्रवेश हुआ। नवउदारवाद प्रणाली के नीतिगत सुधारों के अधीन जीन तकनीक द्वारा दूसरी हरित क्रांति लाने का प्रयास किया गया था। जिसे **'जीन क्रांति'** के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अर्थात् जैव प्रौद्योगिकी पर आधारित जीन संवद्र्घित (जीएम) कृषि को अपनाया गया है। जीएम फसल प्रौद्योगिकी की सबसे विवादास्पद फसल की चर्चा की जाए तो बीटी कपास है। कपास पर हमला करने वाले कीटों उदाहरणार्थ बोलवॉर्म

को रोकने के लिए **'चमत्कारी फसल'** के रूप में बीटी जीन विकसित किया गया था। जिससे कपास की खेती की उपज में संवृद्धि हो और कीटनाशकों की आवश्यकता को कम किया जा सके।

भारत में हाइब्रिड बीटी कपास को कृषि के बाजारोन्मुखी नीति के अधीन सरकार द्वारा वर्ष 2002 में स्वीकृती दी गई थी। इस प्रकार से कपास उत्पादक राज्यों में बीटी कपास का आगमन हुआ जिसमें मुख्यतः छह राज्य आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु शामिल हैं। वर्तमान में, भारत में 90 फीसदी खेतों में अब जीन सवंर्धित बीटी कपास उत्पन्न किया जाता है। अर्थात कपास की खेती को इस आधार पर रूपांकित किया गया था कि जीएम प्रौद्योगिकी किसानों के जीवन में आशा, समृद्धि और अपेक्षा लाएगी।

किन्तु हाल ही के वर्षों में जीएम फसल की यथार्थता कुछ और ही चित्र दर्शाती हैं। विशेष रूप से महाराष्ट्र के सन्दर्भ में बड़े दावे करने वाली हाइब्रिड कपास नीति आज मिथ्या सिद्ध हो गई है जोकि कृषि संकट और किसानों के बदहाली की प्रतीक बन चुकी हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक वर्ष फसल पर बोलवॅार्म का भयानक प्रकोप देखने को मिल रहा है। कीटों का आक्रमण जो बीटी कपास गुलाबी सुंडी को नियंत्रित करने में असफल रहा हैं। जिससे पूरी फसल खराब हो जाती है। परिणामतः उपज में भारी गिरावट दर्ज की गई हैं। वहीं दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन जैसे अनिश्चित प्राकृतिक आपदा नामतः अनावृष्टि एवं सूखा आदि से भी कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता प्रभावित हो रही है। इसके अतिरिक्त, उन्हें उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता है जो कि किसानों की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कारक है। ऐसे में बिचौलिये किसानों की विवशता का लाभ उठा लेते हैं और किसान कर्ज के बोझ अधीन अपनी फसल बिचौलियों को कम कीमत पर बेच देता हैं। अतः किसानों की स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

हताश होकर किसानों ने फसल को नष्ट होने से बचाने के लिए उपयुक्त रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग करना शुरू कर दिया। फलतः कृषि संबंधित (डीज़ल, बिजली, सिचाई, रसायन, कीटनाशक) लागत बढ़ने लगी। जिससे जीएम फसल एक निवेश–गहन हो गई है। आखिरकार, किसानों के लिए ऋण लेना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में सहकारी संस्थाओं, सूक्ष्म वित्तीय संगठन, बैंकों के किसी भी प्रकार की सहायता या वित्तीय योजना के अभाव में किसान आमतौर पर महाजनों या साहूकारों से उच्च ब्याज दर में ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है। अतः किसान फसल की कम मूल्य, पैदावार और कर्ज का भार जैसी बहुविध जटिल संकटों से जूझ रहा है। किसान समय पर कर्ज नहीं चुका पाते हैं। इस प्रकार से किसान कर्ज के दुष्चक्र में फंसते चले जाते है। जिसने न केवल किसानों की मनःस्थिति पर गहरा प्रभाव डाला है बल्कि आजीविका के लिए बड़ा खतरा बन गया है एवं आर्थिक रूप से भी कमर तोड़ दी है। अंततः इन ऋणों का भुगतान करने में असमर्थता एवं कृषि से सम्बंधित अन्य गंभीर समस्याएं किसान आत्महत्याओं का एक प्रमुख कारण बन गई है।

इसके अतिरिक्त, खेदजनक बात यह भी है कि खाद्य उत्पादन का विस्तार करने के परिणामस्वरूप पर्यावरण को भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। जैसे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों आदि के कुप्रबंधन व अत्यधिक उपयोग से मृदा की गुणवत्ता में कमी आई हैं एवं फसल के चक्रण में कमी ने भूमि को अनुपजाऊ बनाया हैं। बल्कि इसके साथ भूजल जैसे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और जल प्रदूषण भी अधिक बढ़ गया हैं।

अतएव, जीएम **'चमत्कारी फसल'** की स्वतः बढ़ती लागत तथा ऋणग्रस्तता के कारण आज किसान **'आत्महत्या की फसल'** का सबब बन गई है। भारतीय अर्थव्यवस्था का निर्धारक तत्व रहा कृषि क्षेत्र आज अधिक उत्पादन की नीतियों के कारण गहरे संघर्ष का सामना कर रहा है। इसके अतिरिक्त खाद्य सूरक्षा, कुपोषण और गरीबी जैसी विकट चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई है। वहीं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, कई अन्य गंभीर दुष्परिणाम मुख्यतः किसान आत्महत्या के मामलें प्रत्यक्ष रूप से सामने आए है।

सांख्यिकीय प्रवृत्ति

देश भर में आज किसानों की आत्महत्या की घटनाएं बढ़ती ही जा रही हैं जो चिंता का विषय है। भारत में अधिकांशतः 1995 से 2010 के बीच लाखों किसानों की आत्महत्याओं के मामलें भारत के विभिन्न हिस्सों से दर्ज हुए है। जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और छत्तीसगढ़। किसान आत्महत्याओं की सबसे अधिक संख्या 2004 में लेख्यांकित की गई जब 18,241 किसानों ने आत्महत्या की। भारत में इन आंकड़ों को राष्ट्रीय अपराध

रिकॉर्ड ब्यूरो (एन.सी.आर.बी) के आकस्मिक मौतें एवं आत्महत्याएँ (ए.डी.एस.आई) के द्वारा विस्तृत सांख्यिकीय सूचना के लिए संग्रहित एवं प्रकाशित किया जाता है। एन.सी.आर.बी के आंकड़ों के अनुसार, 2009 में 11,096 के तुलना में 2010 में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या 15,964 थी। जबकि 2011 में 14,027 किसानों ने आत्महत्या की। वहीं 2012 में देश भर में कुल 13,754 किसानों ने आत्महत्या की थी। हालांकि 2013 में 11,772 गणना में गिरावट आई थी, यथापि यह आंकड़ा पहले के वर्षों की अपेक्षाकृत की दर अभी भी अधिक थी।

वर्ग	तलिका 2 : कृषि क्षेत्र में आत्महत्या					
	2014	2015	2016	2017	2018	2019
किसान	5,650	8,007	6270	5955	5763	5,957
खेतिहर श्रमिक	6,710	4,595	5109	4700	4586	4324
कुल आत्महत्याएं	12,360	12,602	11379	10655	10349	10,281
स्रोतः https://ncrb.gov.in/en/adsi-reports-of-previous-years						

तलिका 2 के आंकड़ों के अनुसार किसान की आत्महत्या के मामलों का क्रम चरम पर पहुंच गया जब 2014 में, कुल 12,360 किसान आत्महत्या (5,650 किसान और 6,710 खेतिहर श्रमिक) के लिए बाध्य हुए है। 2019 के आंकड़ों के अनुसार आत्महत्या करने वाले सर्वाधिक किसान और खेतिहर श्रमिक महाराष्ट्र से (38.2 प्रतिशत), कर्नाटक (19.4 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (10 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (5.3 प्रतिशत) और तेलंगाना (4.9 प्रतिशत) से हैं। रिपोर्ट में उल्लेख है कि कृषि क्षेत्रा से जुड़े 10,281 लोगों (जिसमें 5,957 किसान और 4324 खेतिहर श्रमिक) में से 9312 पुरुष और 969 महिलाएं थी[2]।

तलिका 3 के अनुसार देश के जिन राज्यों में यह समस्या सबसे गंभीर है उनमें महाराष्ट्र का स्थान सर्वप्रथम है, 2015 में महाराष्ट्र में 4291 किसानों ने आत्महत्या की। उसके पश्चात कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, तेलंगाना और छत्तीसगढ़ का स्थान है। यह देखा गया है कि जिन किसानों ने आत्महत्या की वे भारी ऋण के बोझ तले डूबे हुए थे। कृषि से प्राप्त आय ऋण चुकाने के लिए पर्याप्त नहीं होना, किसी भी प्रकार की सहायता का अभाव एवं बढ़ती हताशा आदि मुख्य कारक हैं जब किसानों को शायद अपना जीवन समाप्त करना ही एक विकल्प के रूप में नजर आता है।

तलिका 3: राज्यों में आत्महत्या (किसान और खेतिहर श्रमिक)						
राज्य	2014	2015	2016	2017	2018	2019
महाराष्ट्र	4004	4291	3661	3701	3594	3927
कर्नाटक	768	1569	2079	2160	2405	1992
आंध्र प्रदेश	632	916	804	816	664	1029
मध्य प्रदेश	1198	1290	1321	955	655	541
तेलंगाना	1347	1400	636	851	908	499
छत्तीसगढ़	755	954	682	502	467	302
स्रोतः https://ncrb.gov.in/en/adsi-reports-of-previous-years						

सरकार की पहल

- राहत पैकेज 2006
- महाराष्ट्र विधेयक 2008
- कृषि ऋण छूट और ऋण राहत योजना 2008
- महाराष्ट्र राहत पैकेज 2010
- केरल के किसानों के ऋण राहत आयोग (संशाधन) बिल 2012
- आयस्रोत पैकेज विविधता 2013
- अन्नदाता सुखीभव योजना, 2019

यद्यपि सरकार ने इस संकट के समाधान के रूप में किसानों को राहत एवं उज्जवल भविष्य सुनिश्चित करने के प्रति, उनकी दशा और आय में सुधार हेतु, कृषि उत्पादन लागत व उत्पादकता में वृद्धि के लिए अनेक प्रयास किये है। फिर भी किसानों के आत्महत्याओ का सिलसिला समाप्त ही नहीं हो रहा है। उपरोक्त आंकड़े इस बात की ओर स्पष्ट संकेत हैं कि इस मुद्दे को सर्वोपरि महत्व देते हुए सरकार द्वारा अविलम्ब रूप से युद्ध स्तर पर संबोधित करने की आवश्यकता है।

आत्महत्याएं क्यों?

''जय जवान–जय किसान'' के नारे के बीच, आज हम स्पष्ट रूप से देख सकते है कि देश के अन्नदाता की स्थिति अत्यंत दुःखद है। अतः किसानों की बढ़ती आत्महत्या के वह कौन से कारण है कि विविध अनुवृत्ति एवं योजनाओं के प्रतिकूल आज भारतीय किसान आत्महत्या करने को विवश हैं? किसान आत्महत्या की यह भयावह स्थिति क्या सरकार की त्रुटिपूर्ण नीतियों का परिणाम है?

भारत में किसानों की आत्महत्या के लिए प्राकृतिक आपदाओं एवं मानवजनित मुख्य योगदायी कारक हैं। इस प्रकार से **प्राकृतिक श्रेणी** में जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, भारी वर्षा की स्थितियाँ, असामान्य मानसून, अपर्याप्त सिंचाई संबंधित व्यवस्था, जल संसाधन या जलभृतों का सूखना इत्यादि जिससे नकदी फसलें नष्ट हो जाती है। परिणामतः किसान का प्रतिफल उसके कृषि उत्पादन लागत के आकलन के अनुरूप न होने से किसानों पर अतिरिक्त ऋण का बोझ पड़ता है। फलतः किसान ऋण, गरीबी और भुखमरी जैसी कष्टमयता से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या का मार्ग चुनते हैं।

प्रकृति के प्रकोप के अतिरिक्त **मानवजनित** विशेष कारकों में किसानों के सामने कई अन्य बड़ी समस्याएं है जैसे कीमत निर्धारण की नीति, उच्च ऋणग्रस्तता, मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तिगत मुद्दे, पारिवारिक उत्तरदायित्व, आनुवांशिक बदलाव वाली या जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) फसलें आदि सम्मलित हैं। एन.सी.आर.बी ने भी अपनी रिपोर्ट में इन समस्त कारणों को सूत्रबद्ध किया है। साथ ही ऋण नीति की विसंगतियां और सरकार की कृषि आर्थिक विकास की **'उदारीकरण'** नीतियां किसानों के विक्षुब्धता के लिए जिम्मेदार है।

यदि किसान आत्महत्या जैसे गंभीर विषय का सूक्ष्म विवेचन करे तो मुख्य कारक स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं–कि गरीबी, भुखमरी एवं निरन्तर असफलताएं किसानों में निराशा और खेती से आशाभंग की स्थिति पैदा कर उन्हें आत्महत्या तक ले जा रहे हैं। यह एक विडम्बना है कि परिवार और देश का भरण पोषण करने वाला जब आत्महत्या जैसा कठोर कदम उठता है तो क्रमशः व्यवस्था के समक्ष **'संरचनात्मक असमानता'** के रूप में संस्थानों, राजनेताओं और नौकरशाहों के समक्ष कई विचारणीय प्रश्न चिन्ह खड़े करता है।

परिणाम और विश्लेषणात्मक चर्चा

'तुम्हारी फाइलों में गांव के मौसम गुलाबी हैं, तुम्हारे आंकड़े झूठे, सभी दावे किताबी है।'

क्या सरकार की भूमिका एवं दायित्व को **'संरचनात्मक दरकिनार'** के रूप में हाशिये पर स्थित समूहों के प्रति उपेक्षा एवं गंभीर सामाजिक विषमता को प्रतिबिंबित करता है? क्या इस प्रकार की आधुनिक आर्थिक असमानता ''**संरचनात्मक हिंसा**'' की ओर संकेत करता है?

जोहॅान गाल्टुंग का संरचनात्मक हिंसा का सिद्धांत

संरचनात्मक हिंसा के सिद्धांत को नार्वेजियन समाजशास्त्री जोहॅान गाल्टुंग द्वारा प्रतिपादित किया गया है। जिसका उल्लेख उन्होंने ''हिंसा, शांति अनुसंधान'' (1969) लेख में किया था। इस अवधारणा को समाज की संरचना में निर्मित सामाजिक अन्याय और असमानता के रूप में वर्णित किया गया है। यह हिंसा के उस रूप को संदर्भित करता है जिसमें सामाजिक संस्थाएं या ढांचे हाशिए वाले समुदायों या समाज में रह रहें व्यक्ति–विशेष की मूलभूत आवश्यकताओं को रोककर लोगों को हानि पहुंचाता है या उन्हें अवसरों से वंचित करता है। जहाँ संरचनाओं के द्वारा जनमानस को आधारभूत आवश्यकताओं के लिए निरंतर संघर्ष करना या अधिकारों का अभाव होना शामिल है। गाल्टुंग के प्रस्तावित संरचनात्मक हिंसा के उदाहरणों में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, चिकित्सा या कानूनी असमानताओं को समाविष्ट करता है। जो कुछ विशिष्ट समूहों या समुदायों पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार से, गरीबी, भुखमरी, उत्पीड़न, वर्गवाद, जातिवाद, लिंगवाद, राष्ट्रवाद या नस्लवाद जैसी समस्याएं प्रस्तावित संरचनात्मक हिंसा के कुछ उदाहरण हैं। उनकी परिभाषा में संरचनात्मक हिंसा अदृश्य हिंसा है। अकाल मृत्यु संरचनात्मक हिंसा का एक उच्च कारण है।

प्रत्येक किसान की आत्महत्या के पीछे का वृत्तांत, व्यथा, परिस्थितियाँ एवं कारण एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं यदि समानता है तो वह है – ''घर के अन्नविद की मृत्यु''। परिवार के मुखिया के निधन के पश्चात् उसके बच्चों और विधवा स्त्री की स्थिति बद से बदतर होती चली जाती है जिसका परिणाम और प्रभाव आर्थिक, मानसिक, भावनात्मक रूप में साक्ष्य हैं। पारिवारिक व्यय के उत्तरदायित्व और खराब आर्थिक स्थिति के कारणवश उनके बच्चे असमय विद्यालय छोड़कर खेतिहर मजदूरी करने को मजबूर हो जाते है। कई मामलों में परिवार के अन्य सदस्यों पर गंभीर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी देखा गया हैं। पीड़ित परिवारों में अधिकांशतः, भावी जीवनयापन की चिंता और तनाव की प्रवर्ति विकसित हो जाती है। साथ ही, किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा या कल्याणकारी प्रयास भी नहीं है जिससे कि परिवार की उत्तरजीविता का निर्वाह हो सके। इस प्रकार की कुंठा मनोविकृति की ओर ले जाता है। जहाँ इस बात की आशंका और अधिक बढ़ जाती है कि निराशा के कारण परिवार के कुछ अन्य सदस्य कहीं आत्महत्या ना कर बैठे। अतेव, इस प्रकार का **''संरचनात्मक दरकिनार''** उप–वर्गीय या हाशिए पर रह रहे समुदायों के प्रति संस्थाओं की भूमिका एवं दायित्व के उपेक्षित प्रवर्ति को प्रदर्शित करता है। जिसका संबंध, शांति और संघर्ष अध्ययन के अध्येता, **जोहॉन गाल्टुंग** के **'संरचनात्मक हिंसा'** से प्रत्यक्षतया जुड़ा है।

भारत के सन्दर्भ में संस्थाओं की दोषपूर्ण विकास ढाँचे ने लाचार व गरीब सीमान्त किसान वर्ग पर नकारात्मक प्रभाव डाला हैं। इस प्रकार से, कृषि का हाशिये पर रहना उसकी नियति बन गया है। इस **संरचनात्मक हिंसा** का गंभीर परिणाम कृषि संकट एवं किसान की आत्महत्या के रूप में यथोचित प्रमाण हैं। इस प्रकार की परिस्थिति अमानुषिक और असंवेदनशीलता की पराकाष्ठा है। तदनुकूल सामाजिक पीड़ा, अन्याय या उत्पीड़न के लिए संस्थानों को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। अतेव, वर्तमान क्षण में किसान आत्महत्या की विकट स्थिति प्रकाशतः भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतिया की ओर इंगित करती है जोकि विभिन्न संरचनाओं के ढाचों और लालफीताशाही के दोषपूर्ण उदारीकरण की आर्थिक नीतियों से उत्पन्न हुई है। सदैव की भांति किसानों की आत्महत्या से संबंधित मामले कुछ दिनों पुरजोर तरीके से चर्चित किये जाते है। या फिर सरकारों ने मात्र क्षतिपूर्ति राशि प्रदान कर या राहत पैकेज की घोषणा के द्वारा स्वयं की जवाबदेही को सीमाबद्ध कर लिया हैं। फलस्वरूप, वास्तविक समस्या यथावत् बनी रहती है और आत्महत्या के इस अनुक्रम की सूची में एक नया नाम और चेहरा जुड़ता चला जाता हैं। अतः किसान आत्महत्या की त्रासदी पर अधिक तत्परता से ध्यान देने की आवश्यकता है।

आगे का सुझाव

आत्महत्या को रोकने के लिए और कृषि संकट को कम करने हेतु सरकार की नीति एक प्रभावी दृष्टिकोण है। अतः निम्नलिखित प्रयासों पर कदम उठाने की आवश्यकता हैं। जोकि की निश्चित रूप से किसानों की प्रगति में सहायक साबित होंगे।

- सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के इस युग में **ई–गवर्नेंस** कृषि को अनिवार्य रूप से बढ़ावा दिया जाना चाहिए। ताकि संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के एकीकृत प्रयोग का अधिकतम लाभ सीधे किसानों तक पहुंचे। यहां ये उल्लेखनीय है, कृषि अधिकांशतः मानसून पर निर्भर है जहाँ मानसून की असफलता के कारण फसलें नष्ट हो जाती है। जो किसानों के संकट का कारण बनती है। अतः मौसम का पूर्वानुमान की शीघ्र जानकारी प्राप्त करने हेतु एंड्रॉयड आधारित **रिमोट सेंसिंग ऐप** विकसित किया जाना चाहिए। इस ऐप के उपयोग से कृषि एवं मौसम पूर्वानुमान के लिए तात्कालिक सूचना प्राप्त करने में सहायक होगा। इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में किसानों के हितों को सुनिश्चित करने के लिए सटीक प्रौद्योगिकियों को आरंभ किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए विज्ञान एवं तकनीक की मदद से रिमोट सेंसिंग ड्रोन, जीपीएस तकनीक, कृषि पार्टल, स्मार्ट फोन और कंप्यूटर की पहुंच काफी मददगार सिद्ध हो सकते हैं।
- **कृषि शिक्षा** का व्यापक प्रचार–प्रसार ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में होना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक संस्थान में न्यूनतम माध्यमिक स्तर तक की कृषि संबंधित विषय की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए। उच्च शिक्षा स्तर पर भी कृषि शिक्षा के प्रति छात्रों की रुचि को विशेषज्ञता के रूप में जागृत करने की आवश्यकता है। वास्तव में, कृषि को सामाजिक विज्ञान से जोड़ते हुए पाठ्यक्रमों के मौजूदा घटकों में संशोधन कर अंतः विषय के आधार पर रूपांकित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की छात्रावृति दी जाए जैसे अनुसंधान के लिए मेधावी छात्रों को राष्ट्रीय प्रतिभा छात्रवृति आदि।
- कृषि के क्षेत्र में **कौशल विकास तथा उद्यमवृत्ति** पर बल दिया जाना चाहिए। अतः कृषि क्षेत्र में व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की दिशा की ओर कार्य किया जाए। यदि कृषि को व्यवसाय से जोड़ा जाए तो किसानों की

समस्याओं का हल हो सकता है। जिसके लिए प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करने को प्रोत्साहित किया जाए एवं नियमित अंतराल पर विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए। उदाहरण के लिये अनुसंधान केंद्रित शोध संस्थान, शिक्षण केंद्रित विश्वविद्यालय अथवा **कृषि विश्वविद्यालय** स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि युवा पीढ़ी का रुझान कृषि क्षेत्र की ओर आकर्षित किया जा सके। यह न केवल कृषि संकट का निराकरण करने में मदद करेगा बल्कि बेरोजगारी भी दूर करने में सक्षम होगा।

- राज्य स्तर पर किसानों की आत्महत्या से जुड़े मानसिक स्वास्थ्य पहलुओं की निगरानी के लिए सरकार द्वारा **24×7 टोल–मुक्त** हेल्पलाइन स्थापित किया जाना चाहिए। ताकि त्रासदी में फंसा किसान हेल्पलाइन पर कॉल कर मनोवैज्ञानिक परामर्श ले सके। यह हेल्पलाइन किसानों की कृषि संकट से संबंधित शिकायतों और प्रश्नों के साथ–साथ समाधान प्रदान कर सकती हैं।
- किसानों को साहूकारों के ऋण के जाल से मुक्त कराने के लिए सरल सरकारी **बैंकिंग व्यवस्था** के ऋण के दायरे को बढ़ाए जाने की शीघ्र आवश्यकता है। संस्थागत ऋण का एक सुगम प्रक्रियाविधि प्रावधान के अंतर्गत उचित उपाय किये जाने चाहिए।
- प्रति वर्ष कीटों का आक्रमण या प्राकृतिक आपदा से फसल के बर्बाद होने के चलते किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है अतः सार्वजनिक नीतियों के माध्यम से **फसल बीमा योजना और वित्तीय सहायता** जैसी पहल भी करवाई जानी चाहिए।
- निस्संदेह आज हमे पुनः **पारम्परिक खेती एवं जैविक खेती** की कृषि पद्धतियों की ओर रुख करने की आवश्यकता है। जहाँ एक ओर जीएम फसल की तुलना में जैविक खेती कम लागत देती है वही दूसरी ओर लोगों को बेहतर पोषण ओर रसायन मुक्त भोजन खाने को मिलेगा। इसके अतिरिक्त संवेदनशील मुद्दों जैसे पर्यावरण के अनुरूप और मानव स्वास्थ्य के अनुकुल से भी जैविक खेती की उत्पादन प्रणाली समय की आवश्यकता है। मिसाल के लिए पूर्वोत्तर में स्थित सिक्किम पूर्ण रूप से जैविक राज्य घोषित किया जा चुका है।

कृषि क्षेत्र के लिए नए दृष्टिकोण और नवाचारों का कार्यान्वयन बहुत महत्वपूर्ण है। ताकि किसानों को सशक्त बनाया जा सके।

निष्कर्ष

सरकार को कृषि संकट और किसानों की आत्महत्याओं के मुद्दे को रोकने के लिए संकल्प–शक्ति के साथ प्रयत्न करने चाहिए। केवल अनुवृत्ति, अल्पकालिक राहत और ऋणमाफी के माध्यम से वर्तमान संकट से उबरने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। अब तक के किए गए पूर्व प्रयासों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। आशा करते है कि भविष्य में किसानों के हितों को सर्वोपरि रखते हुए विशेष नीतियाँ सूत्रित करने की जरूरत है। सरकार को विभिन्न हितधारकों के साथ विचार विमर्श के द्वारा किसान ऋणग्रस्तता को कम करने, फसल की पैदावार में सुधार, फसल बीमा योजना, जल संसाधनों का कुशलतापूर्वक प्रबंधन, आय के वैकल्पिक स्रोतों, नए कौशल प्राप्त करना, सस्ता ऋण, बुनियादी संसाधनों पर पहुंच और नियंत्रण (भूमि, जल, जैव स्रोत), आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी और ज्ञान प्रबंधन का व्यापक उपयोग, सिंचाई सुविधा का विस्तार और विपणन सुधार आदि प्रभावी और दीर्घकालिक उपाय अपनाए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त, सरकार को मूल्य निर्धारण, खरीदी प्रबंधन और सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर काम करके कृषि को आर्थिक रूप से साध्य बनाने की अनिवार्यता पर बल दिया जाना चाहिए। जोकि निश्चित रूप से सार्वजनिक नीति निर्माण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ होगा। संक्षेप में, देश की सुरक्षा, आत्मनिर्भरता, प्रगति की उपलब्धियाँ अर्थहीन है यदि संस्थाये कृषि संकट और किसानों की आत्महत्याओं के मामलों को नियंत्रित करने में सक्षम नहीं हो पाए क्योंकि देश की समृद्धि किसानों की उन्नति और विकास पर टिकी है।

ग्रन्थसूची

1. Galtung. Johan, (1969). 'Violence, Peace, and Peace Research', Journal of Peace Research, Vol. 6, Issue No. 3, Sage Publications.
2. Galtung. Johan, and Fische. Dietrich, (2013). Pioneer of Peace Research. Springer, Berlin, Heidelberg.
3. Bodh. P C, (2019). Farmers' suicides in India: A Policy Malignancy. Abingdon, Oxon; New York, NY: Routledge.

4. Talule. Dnyandev, (2020). 'Farmer Suicides in Maharashtra, 2001–2018: Trends across Marathwada and Vidarbha', Economic and Political Weekly, Vol. 55, Issue No. 25.
5. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1693205
6. https://ncrb.gov.in